द्रव्य : जीव-अजीव

डॉ. विजय कुमार

दर्शनशास्त्र विभाग

लंगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर

जैन दर्शन में सत्, तत्त्व, अर्थ, द्रव्य, पदार्थ, तत्त्व आदि शब्द लगभग एक ही अर्थ में व्यवहृत हुए हैं। जैन दर्शन तत्त्व को सापेक्षतः नित्य-अनित्य, सामान्य-विशेष, कूटस्थ तथा परिवर्तनशील माना है। यह अनन्त धर्मों वाला होता है। इन अनन्त धर्मों में कुछ स्थायी होते हैं जो सदा वस्तु के साथ होते हैं। उन्हें गुण कहते हैं। कुछ धर्म ऐसे होते हैं जो बदलते रहते हैं, उन्हें पर्याय कहते हैं। जैसे सोना में सोनापन गुण है तथा अंगूठी या कर्णफूल आदि बाह्य रूप पर्याय हैं। इसीलिए जैन दर्शन द्रव्य को परिभाषित करते हुए कहता है- **गुणपर्यायवद् द्रव्यम्**। अर्थत् द्रव्य गुण और पर्याय स्वरूप है। जैन दर्शन में द्रव्य को निम्न रूप में विभाजित किया गया है-

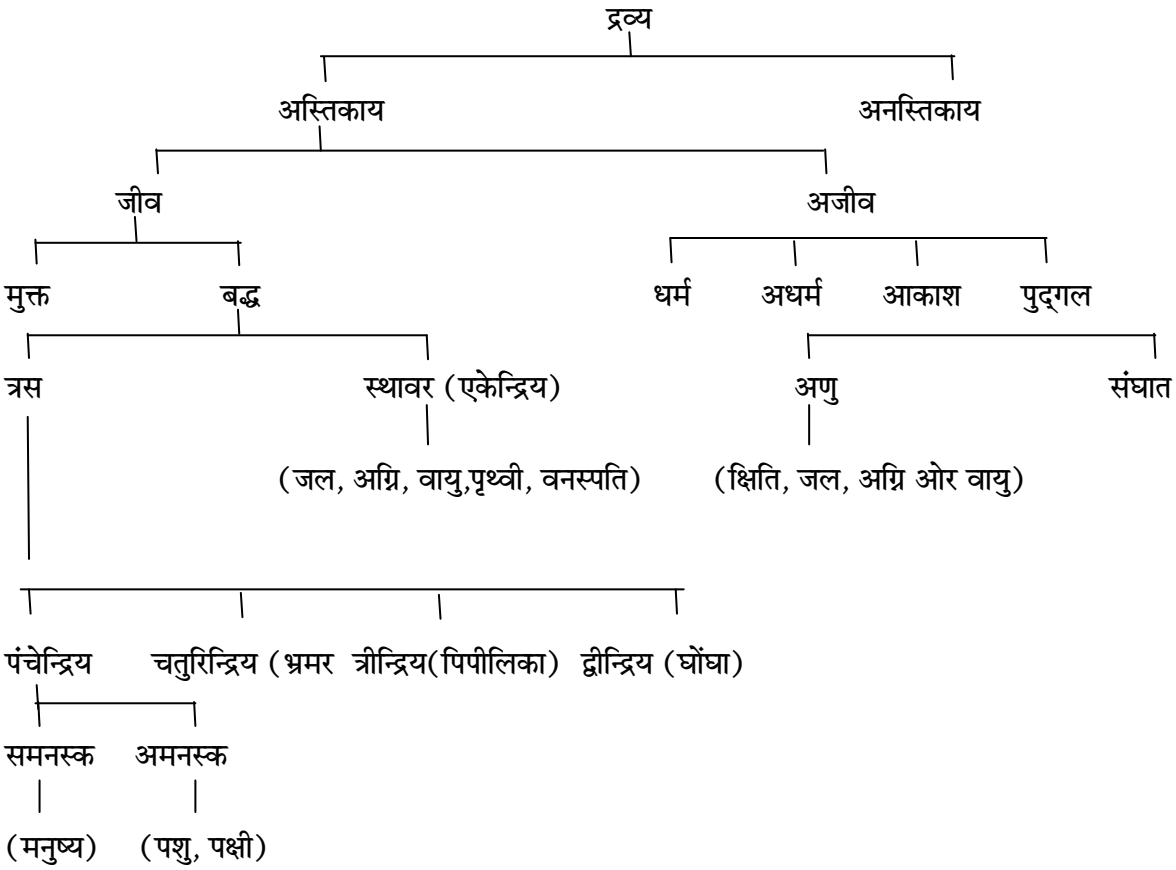

जीव

जीव को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि 'उपयोगो लक्षणम्'। अर्थात् उपयोग जीव का लक्षण है। यहाँ उपयोग का अर्थ है- बोधगम्यता। जीव में बोधगम्यता होती है। और बोधगम्यता वहीं हो सकती है जहाँ चेतना हो। अतः चेतना जीव का लक्षण है। जिसमें चेतना नहीं होगी वह किसी चीज की उपयोगिता को क्या समझेगा? उपयोग में ज्ञान और दर्शन सन्निहित होते हैं। किन्तु जीव में अनन्त चतुष्टय है- अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य।

जीव का स्वरूप

जैन दर्शन के अनुसार सभी वस्तु में गुण और पर्याय होते हैं। जीव में भी गुण और पर्याय होते हैं। चेतना जीव का गुण है और जीव जो विभिन्न रूपों में दिखाई देता है वे इसके पर्याय हैं। पर्याय की विभिन्न अवस्थाएं भाव कहलाती हैं। इन्हें ही जीव का स्वरूप कहते हैं- औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिक ।

औपशमिक- उपशम से औपशमिक बना है। उपशम का अर्थ होता है- दब जाना। जब सत्तागत कर्म दब जाता है, उनका उदय रूक जाता है और उसकी फलस्वरूप जो आत्मशुद्धि होती है उसे औपशमिक भाव कहते हैं। जैसे पानी में मिली हुई गन्दगी का बर्तन के तल में बैठ जाना।

क्षायिक- क्षय से क्षायिक बना है। कर्मों का पूर्णतः क्षय हो जाने से जो आत्मशुद्धि होती है उसे क्षायिक भाव कहते हैं। पानी से जब गन्दगी दूर हो जाती है और पानी स्वच्छ हो जाता है। उसी तरह कर्मों के सर्वांशतः क्षय हो जाने से आत्मा पूर्णरूपेण शुद्ध हो जाती है। उस स्थिति को क्षायिक कहते हैं।

क्षायोपशमिक- क्षय और उपशम के संयोग से क्षायोपशमिक भाव बनता है कुछ कर्मों का क्षय हो जाना तथा कुछ कर्मों का दब जाना। जैसे पानी में से कुछ गन्दगी का निकल जाना और कुछ का पात्र के तल में बैठ जाना। जैसे कोदो को धो देने से उसकी मादकता कम जाती है किन्तु कुछ मादकता रह जाती है। इस प्रकार कर्मों के क्षय उपशम से जो भाव बनता है उसे क्षयोपशम कहते हैं।

औदयिक- उदय से औदयिक बनता है। दबे हुए कर्मों का उदित हो जाना औदयिक भाव है। जिस प्रकार पानी के पात्र के तल में बैठी हुई गन्दगी पात्र के हिल जाने से पुनः ऊपर आ जाती है, उसी प्रकार औपशमिक फिर से उदित हो जाते हैं, क्रियाशील हो जाते हैं। जिससे आत्मा का मालिन्य बढ़ता है।

पारिणामिक- स्वाभाविक ढंग से द्रव्य के परिणमन से जो भाव बनता है उसे पारिणामिक भाव कहते हैं।

जैन दर्शन में जीव को ही आत्मा नाम से विभूषित किया गया है। यह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से प्रमाणित है।

आत्मा चेतनायुक्त है– जैन दर्शन चेतना को आत्मा का स्वभाव मानता है। चेतना और आत्मा अलग–अलग करके नहीं जानी जा सकती है।

आत्मा कर्ता है– जैन दर्शन के अनुसार जिस समय हम जीव को परिणामी मान लेते हैं उसी समय वह कर्ता भी सिद्ध हो जाता है। जीव कभी गाता है, कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी बैठता है, कभी सोता है। यह जीव ही करता है दूसरा कोई नहीं।

आत्मा भोक्ता है– जैन दर्शन के अनुसार जीव सुख–दुःख का भोग करता है। अजीव को सुख–दुःख का बोध नहीं होता।

जीव स्वदेहपरिणाम है– जीव अपने को शरीर के अनुसार विस्तृत अथवा संकुचित करके रखता है। कर्म के अनुसार उसे चींटी का शरीर मिले अथवा हाथी का दोनों में ही वह रह लेता है। इससे यह ज्ञात होता है कि जीव में चेतना के साथ–साथ विस्तार भी है।

आत्मा प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न है– जैन दर्शन मानता है कि यदि सभी जीव एक ही होते तो जो भिन्नताएँ हम देखते हैं, अनुभव करते हैं यह कैसे होता। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि में भिन्नता क्यों होती।

आत्मा पौद्गलिक कर्मों के साथ होता है– जैन दर्शन के अनुसार कर्म पौद्गलिक है। यह जीव के साथ होता है। कर्मों के कारण ही सुख–दुःख, भेद–विभेद आदि देखे जाते हैं। स्वभावतः जीव में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य होते हैं। लेकिन सभी जीवों में प्रायः इन सब न्यूनाधिकता देखी जाती है। इसका कारण कर्म ही है।

●